

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-



स्वानुभूतिप्रकाश



प्रकाशक :

श्री सतश्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

शासन शिरोमणि निश्चयरत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग प्रकाशक, भावीके भगवंत, जिनेन्द्र लघुनंदन कहानगुरुकी १३४ वीं जन्मजयंतीके मंगलकारी प्रसंग पर उनके पादपंकजमें शत शत वंदन हो!



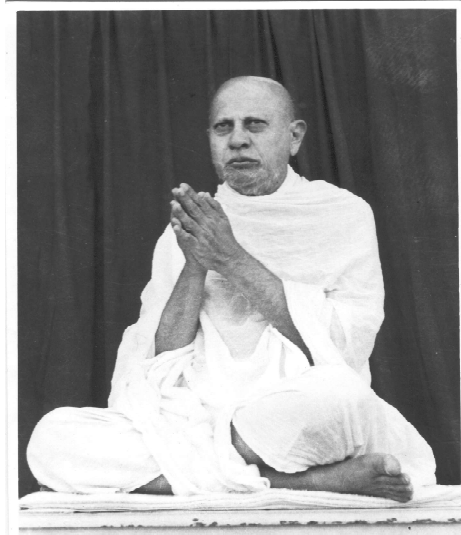
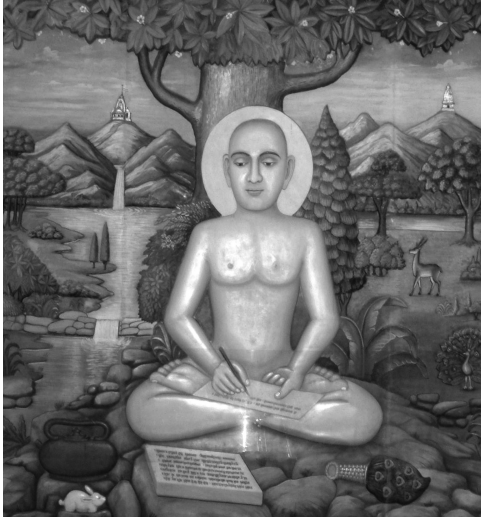
गुरुदेव तो स्वयं एक अलौकिक द्रव्य थे, अलौकिक उनका परिणामन था और पुण्यका वाणीका योग भी कोई अलौकिक सातिशय योग था। गुरुदेवश्रीको श्रुतकी लब्धि थी। सुननेवालेको तो कानमें कोई अमृतकी धारा करता हो ऐसा मीठा लगे। कितने ही जीवोंको तो ऐसा लगा है कि मानों कोई दैवी वाणी आ रही है! एक असाधारण युगपुरुष जैसा गुरुदेवका व्यक्तित्व था एवं कर्तृत्व भी ऐसा ही था।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०४, वर्ष-२५, अप्रैल-२०२३

श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार, दि. २२-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९७,९८ प्रवचन-४१



परम समाधि शिवसुख का कारण है
वज्जिय सयल-वियप्पइ परम-समाहि लहंति।
जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव-सुखं भणंति॥ ९७॥
तजि कल्पना जाल सब, परम समाधि लीन।
वेदे जिस आनन्द को, शिव सुख कहते जिन॥
अन्वयार्थ - (सयल-वियप्पइ वज्जिय) सर्व विकल्पों
को त्यागने पर (परम समाहि लहंति) जो परम समाधि को
पाते हैं, (जं क वि साणंदु विंदहिं) तब कुछ आनन्द का
अनुभव करते हैं (सिव सुखं भणंति) इसी सुख को मोक्ष
का सुख कहते हैं।

योगीन्द्रदेव कृत यह योगसार शास्त्र। योगसार का
अर्थ यह है कि वास्तविक आत्मा का जो स्वरूप है,

उसमें एकाग्र होने की क्रिया को यहाँ योगसार कहते हैं।
राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प में तो अनादि का एकाग्र
है, वह तो संसार है, दुःखरूप है। विकार का अनुभव है
संसार का; उससे योग अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वरूप में,
पवित्र आत्मा, अपना आत्मद्रव्य, अपने स्वभाव से खाली
नहीं है। वस्तु स्वयं है, वह वस्तु स्वभाव से रहित - खाली
नहीं होती, उसका त्रिकाल स्वभाव आनन्द और ज्ञान है।
ऐसे स्वभाव से रहित नहीं हो सकता। ऐसे आत्मा में
एकाकार होने को यहाँ योगसार कहते हैं, उसे यहाँ मोक्ष
का मार्ग कहते हैं। ९७... अनन्त सुख का अथवा परम
समाधि शिवसुख का कारण है।
वज्जिय सयल-वियप्पइ परम-समाहि लहंति।

जं विंदहिं साणंदु क वि सो सिव-सुखं भणंति॥ १७॥

सर्व विकल्प को छोड़कर, देखो! विकल्प है अवश्य... आत्मा अपने आनन्द और अनन्त गुण के शुद्धस्वभाव से कभी रहित हुआ ही नहीं, तथापि अनादि से उसकी दशा में, दशा अर्थात् हालत में, राग के विकल्प-वासना है। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् वासना-विकृति, वृत्ति है। उसे छोड़कर... अनादि से दशा में कहीं शुद्ध नहीं है। स्वभाव से शुद्ध कभी खाली नहीं है, यह अलग बात हुई परन्तु उसकी दशा में - हालत में अनादि से शुद्ध है - ऐसा नहीं है। अनादि से शुद्ध हो तो उसे शुद्ध करने का प्रयत्न - पुरुषार्थ कुछ नहीं रहता; इसलिए अनादि से उसकी दशा में अपने स्वभाव को भूलकर पर स्वभाव के लक्ष्य से अनेक प्रकार के शुभ और अशुभभाव उत्पन्न करता है, वह दुःखरूप दशा है, उसे छोड़कर... ऐसा कहा है।

यह तो बहुत संक्षिप्त में बात है न, एकदम सार... सार... सार... है। योग अर्थात् मोक्ष का मार्ग; उसका भी यह सार। जैसे नियमसार... नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग, सार अर्थात् व्यवहार, विपरीतता आदि; निश्चय से विपरीत व्यवहार, उससे रहित। भगवान आत्मा, जिसे आत्मा के हित की लगनी है (कि) अरे! अनन्त काल से यह आत्मा भटका, इसकी दया इसे आती हो, अरे! यह कितना भटका... आहा...हा...! कहीं काल का अन्त नहीं और भाव के दुःख की कल्पना का पार नहीं। इसलिए पहले से शुरु किया है न! 'चार गति दुःख से डरे...' यह कोई बात की बात नहीं है। इसे ऐसा लगना चाहिए कि मैं एक आत्मा हूँ और यह चीज और यह अनादि काल से परिभ्रमण के दुःख क्या है? परिभ्रमण चार गति के चौरासी के अवतार - ऐसे इसके दुःख की ही दशा और दुःख की ही खान संसार है। ऐसा जिसे लगे, उसे कहते हैं कि आत्मा का हित करना हो तो यह विकल्प की जाल जो शुभ-अशुभ आदि संसार, विकारभाव, उसका लक्ष्य छोड़ दे। पहले उसका लक्ष्य छोड़ दे और वस्तुस्वभाव अनन्त आनन्द और शान्ति समाधि से भरपूर यह (आत्मा) पदार्थ है -

ऐसा विश्वास कर। अर्थात् उसका सम्यग्दर्शन प्रगट कर। समझ में आया?

शान्ति और आनन्द हो, वह मेरे स्थान में, मेरे क्षेत्र में, मेरे भाव में है। ऐसा विकार में शान्ति और सुख अनादि से माना, उसे ऐसे गुलाट खाकर, राग की एकत्वबुद्धि छोड़कर, स्वभाव की एकता करके आत्मा में आनन्द है, शान्ति है, उसके स्वाद के समक्ष जगत का सभी स्वाद फीका है - ऐसी दृष्टि हो, फिर विकल्प को छोड़कर स्थिर हो। यह तो चारित्र के अधिकार की विशेष बात है न! विकल्प को छोड़कर। परम-समाधि लहंति परम शान्ति पाता है। भगवान आत्मा में जो शान्ति... शान्ति... शान्ति... जिसका स्वभाव है। समाधि कहो, शान्ति कहो, समभारूप अमृत, समस्वरूप अमृत वीतरागभाव कहो - ऐसा जो आत्मा, वह विकल्प को छोड़कर और निर्विकल्प आनन्द के लाभ को प्राप्त करे, उसे परम शान्ति पाना कहते हैं।

जो परम समाधि को प्राप्त करता है। यह पर्याय की बात है, हाँ! वस्तु तो त्रिकाल... त्रिकाल परम शान्ति और समाधि से ही भरपूर पदार्थ है। वस्तु हो, उसका स्वभाव निर्दोष ही होता है। वस्तु का कोई सदोष स्वभाव नहीं होता; सदोषता तो दशा में - हालत में - पर्याय में होती है। वस्तु तो निर्दोष स्वभाव से भरपूर (पदार्थ है)। निर्दोष स्वभाव कहो या समाधिस्वरूप कहो, या वीतराग समरस कहो - ऐसे आत्मा का, पुण्य -पाप के विकल्प को छोड़कर अनुभव करना, तो वह शान्ति को प्राप्त करता है। वह शान्ति अर्थात् आत्मा के आनन्द के सुख को पाता है। यहाँ तो बहुत ही संक्षिप्त में और रोकड़िया की बात है। समझ में आया? इस संसार में भी नगद का धन्धा है। जितना विकल्प करे उतना दुःख, उसी काल है और कर्म बाँधेगा तथा संयोग मिलेंगे, वह तो बाहर की चीजें रहीं, परन्तु जितना आत्मा के स्वभाव से विपरीत भाव किये, वे भाव दुःखरूप का वेदन उसी काल में है। १०२ गाथा में आता है न? 'उस समय कर्ता और उस समय भोक्ता' करइ वेदइ १०२ (गाथा), कर्ता-

कर्म (अधिकार) समयसार! उसी समय भोक्ता है, समझ में आया?

कहते हैं कि जितने पुण्य-पाप के विकारी भाव करे, उतना रोकड़िया दुःख उस काल में है। रोकड़िया समझे? धन्धा करते हैं, रोकड़िया धन्धा करे, कोई उधार का धन्धा करे। पहले पैसे दे फिर धन्धा। इन वकीलों का ऐसा धन्धा होता है। हम कहाँ उगाही लेने जाएँगे तेरे घर? ऐसे यहाँ कहते हैं; रोकड़िया धन्धा है। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, उसे भूलकर जितने विकारी भाव करे, वह रोकड़िया दुःख है, उसी क्षण में उसे दुःख है। ठीक होगा यह? यह सब लहर करते दिखते हैं न? यह सब पैसा, खाना - केला, पूड़ी उड़ावे, दूध-पाक और अरबी के गरम-गरम भजिये और उसमें फिर जवान इकट्ठे हुए हों और उसमें पाँच-पचास लाख की आमदनी हुई हो और फिर देखो इनका जलसा उड़ता हो। यह सुख होगा या क्या होगा?

कहते हैं कि भाई! आत्मा आनन्दस्वरूप है, प्रभु! वह अतीन्द्रिय समाधि का पिण्ड प्रभु है। जैसे चैतन्यपिण्ड है, वह ज्ञान की अपेक्षा से; आनन्द पिण्ड है, वह सुख की अपेक्षा से; ऐसे चारित्र का पिण्ड है, वह समभाव की अपेक्षा से (है)। समझ में आया? यह समाधि समभाव। यह समभाव का पिण्ड है और वह सुख का पिण्ड कहा, (इसलिए) वह प्रत्येक एक-एक गुण का वह पिण्ड है। एक-एक गुण से पूरा भरा पड़ा है, एक गुण सर्व व्यापक है न? इसलिए एक गुण से देखो तो एक गुणमय ही सब इकट्ठा है - ऐसे आत्मा को अन्तररुचि और ज्ञान में न लेकर पर-पदार्थ की रुचि और ज्ञेय बनाकर पर का ज्ञान करने से, उसमें राग-द्वेष की उत्पत्ति करके, पर की श्रद्धा और पर का ज्ञान तथा पर सम्बन्धी पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के विकल्प, बस! यह दुःखरूप है। समझ में आया?

उसे कहते हैं कि वर्जकर 'परम शांति लहंति' भगवान आत्मा दुःख के दावानल के विकल्प की जाल को छोड़े अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप अथवा समरस वीतरागस्वरूप में एकाकार होने पर उसे समरस

का - शान्ति का स्वाद आवे, यह उसे धर्म कहते हैं। आहा...हा...! धर्म की अद्भुत व्याख्या, भाई! यह सामायिक की बात अपने दोपहर में आ गयी है और अभी इसमें भी सामायिक की बात आएगी। सामायिक में आनन्द आना चाहिए - ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! यह सामायिक किसी दिन सुनी नहीं (होगी)। सम + अय + लाभ = समता का लाभ। प्रगट, हाँ! स्वरूप में तो समता का पिण्ड ही आत्मा है परन्तु उसे पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति से हटकर; और यहाँ से हटे तब कहीं एकाग्र होगा न! यह अपना आनन्द अथवा समतास्वरूप, चारित्रस्वरूप; स्वयं चारित्रस्वरूप त्रिकाल है, उसमें एकाकार होने पर राग-द्वेष और विकल्परहित जो स्थिरता की शान्ति प्रगट होती है, उसे भगवान सामायिक कहते हैं। आहा...हा...! यह सामायिक कहो, या समाधि कहो। समझ में आया?

अपने उसमें आया था न? भाई! (नियमसार में) परम समाधि अधिकार आया न! और परम समाधि के अधिकार में सामायिक आयी। 'इदि केवलिसासणे' 'इदि केवलिसासणे' यह सब गाथाएँ परम समाधि अधिकार में ही आयी है। समझ में आया? परम समाधि अधिकार में सामायिक की बात आयी थी। बहुत गाथाएँ सामायिक की आयी। वह तो अब पूरा हुआ, अब दोपहर में तो भक्ति अधिकार चलता है।

कहते हैं, भगवान आत्मा अपने स्वरूप से विपरीत - ऐसे राग के विकल्पों को, वासना को छोड़कर, भगवान आत्मा का आश्रय - अवलम्बन लेकर अन्तर में जो शान्ति प्रगट होती है, तब कुछ आनन्द का अनुभव करता है... तब अतीन्द्रिय आनन्द थोड़ा (आया)। यहाँ तो थोड़े की बात है। कवि साणंदु 'कवि' अर्थात् कोई आनन्द अर्थात् किसी प्रकार का अलग आनन्द, ऐसा। संसार का जो आनन्द है, वह तो दुःखरूप है। वह आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द! आहा...हा...!

'आशा औरन की क्या कीजै, ज्ञान सुधारस पीजै...

आशा औरन की क्या कीजै,

भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी,
 आतम अनुभव रस के रसिया, उतरे न कबहूँ खुमारी,
 आशा औरन की क्या कीजै,
 भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी,
 कुत्ता होता है न कुत्ता! जहाँ-तहाँ बटक... बटक दे।
 बटक समझे? टुकड़ा... टुकड़ा... टुकड़ा। टुकड़े के लिए...
 इसी प्रकार यह अज्ञानी जहाँ-तहाँ मुझे कुछ सुख दो न,
 स्त्री का पैसे का, धूल का... कुत्ते की तरह जहाँ-तहाँ
 भटकता है। कुछ पैसे में सुख, कुछ धूल में, कुछ इज्जत
 में, कुछ कीर्ति में, कुछ लड़कों में, कुछ शरीर में, कुछ
 सुन्दरता में... आहा...हा...! 'भटकत द्वार-द्वार लोकन
 के कूकर आशाधारी, आतम अनुभव रस के रसिया, उतरे
 न कबहूँ खुमारी, आशा औरन की क्या कीजै, ज्ञान सुधारस
 पीजै।' आशा... आ...हा...!

किसकी आशा की? भाई! कहाँ स्वर्ग में कहीं सुख
 है? कहाँ देवों में सुख है, लेश्या में सुख है, शरीर में (सुख
 है)। अरे! पुण्य-पाप के भाव में सुख है? कहाँ सुख है?
 भाई! वह सुख तो भगवान आत्मा के अन्दर में है, उसके
 ज्ञानरस को पी! ज्ञानानन्द के निर्विकल्प रस का पान पी।
 आहा...हा...! 'कूकर आशाधारी' हाय... हाय...! कहीं
 मिलेगा, दूसरे बड़ा कहे और अच्छा कहे, शास्त्र पढा
 हुआ, व्याख्यान करना आवे, बहुतों का रंजन करे (कहते
 हैं) भिखारी है। जहाँ-तहाँ यह मुझे ठीक कहे, ठीक कहे।
 क्या है परन्तु तुझे? शरीर कुछ सुन्दर हो तो ऐसा बताना
 चाहे। दर्पण में देखते हैं न? सबेरे देखो भूत की तरह
 (देखते हैं)। छोटा दर्पण हो तो बहुत ऐसा करना पड़े, बड़ा
 हो तो फिर (ठीक)। छोटा दर्पण और सिर बड़ा (होवे),
 यह लक्षण इस समय देखने हों तो भूत जैसे लगते हैं, हाँ!
 उसमें फिर हाथ में वह रह गया हो... कंधा! और एक
 ओर तेल। आहा...हा...! कहीं सुख, कहीं सुख। इसमें
 से सुख, इसमें से सुख। अच्छा दिखूँ तो सुख, मैं अच्छा
 दिखता हूँ न? शरीर अच्छा दिखे तो सुख, आहा...हा...!
 भगवान तू कहाँ भटका, कहते हैं, हैं! कपड़ा-बपड़ा ठीक
 हो, अप-टू-डेट ऐसा लगता हो, कपड़े में डाले कोई

इत्र-चित्र ऐसा डालते हैं न? सेण्ट डालते होंगे परन्तु ऐसा
 डालकर चलते हैं। हम तो... वह अपने 'वेणीभाई', नहीं
 थे? राजकोट! वे प्रतिदिन सामने मिलते थे। बक्षी! प्रतिदिन
 तीन-चार गाँव घुमते प्रतिदिन नागर, नागर थे। सामने हर
 रोज मिलते। सेन्ट अन्दर से सुगन्ध मारे। चारों चले जायें,
 छह-छह मील तक चलें। छह मील चलें, तब लोटोभाडे
 - ऐसा दर्द था कुछ। उस दिन यह देखा, ऐसा साथ में
 निकले, तब वह कपड़े की गन्ध मारती हो, आहा...हा...!
 सेन्ट से सारा, पेन्ट से सुधरे हुए, इससे सुधरे हुए, बाल से
 सुधरे हुए, कपड़े से सुधरे हुए, गहनों से सुधरे हुए और
 बाहर के मकान और मकान की सब घरेलू चीजें -
 फर्नीचर कहो, तुम्हारी भाषा बदलनी है न! उससे हमारी
 शोभा! प्रभु! तू कहाँ भटका है तू? क्यों, भीखू भाई!
 सत्य बात होगी यह? आहा...हा...!

कहते हैं, भाई! यह सुधारस का सागर तो तू है।
 हैं! सुधारस का सागर तू है, उसमें डूबकी मारना छोड़कर
 यह तूने कहाँ डूबकी मारी? कहते हैं, प्रभु! एक बार तो
 देख! इस विकल्प को छोड़। तब तुझे कुछ आनन्द का
 अनुभव आयेगा। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का
 अनुभव, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और सामायिक कहते हैं।
 कामदार! किसी दिन यह सब सुना नहीं। णमो
 अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं (किया है)।

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ समाधि के
 पिण्ड हो गये प्रभु की वाणी में आया था। सामने बड़े इन्द्र
 थे। अहो जीवों! यह परसन्मुखता के विकल्प... यह मुनि
 कहते हैं, वह भगवान की वाणी में आया है वह मुनिराज
 कहते हैं। कोई घर का कुछ नहीं कहते हैं। समझ में
 आया? परमात्मा आनन्द, पूर्णानन्द, समाधि के पिण्ड हो
 गये, भगवान हैं। जिन्हें विकल्प नहीं होता, इच्छा के
 बिना वाणी का प्रपात निकलता है। ओम... ओम...
 ओम... निकलता है, ओम... ध्वनि सम्पूर्ण शरीर से
 (निकलती है) क्योंकि खण्ड-खण्ड मिट गया है। यह
 खण्ड-खण्ड है, इसलिए यह वाणी खण्ड-खण्ड निकलती
 है। अखण्ड आत्मा पूर्ण हो गया तो वाणी भी घनघोर एक

धार निकलती है। ओम.... ओम्कार धुनि सुनि.... समझे न? ओमकार ध्वनि सुनकर अर्थ गणधर विचारे, अर्थ गणधर विचारे। वे यह सब आगम है। सन्तों के द्वारा कथित यह सब आगम है। है भगवान की वाणी के अनुसार, आत्मा में दशा हुई और फिर यह वाणी स्वयं स्वतः निकली है। भाई! तुझे सुख चाहिए हो तो प्रभु तो अन्तर में आनन्द है, हाँ! उस आनन्द को देख न!

उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार।

अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं बार।।

कहो, कामदार! श्रीमद् का पढा है या नहीं। यह उसकी लाईन है। समझे कुछ? यह अन्तिम लाईन थी। जब श्रीमद् का देह छूटने का लगभग काल था, उसके पहले की यह अन्तिम कड़ी है। 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते....' इस अन्तर्मुख चैतन्य प्रभु के सन्मुख देख। 'विलय होत नहीं बार' इस शुभाशुभ राग का नाश होने में देर नहीं। भगवान! तुझमें नहीं, इसलिए नाश हुए बिना नहीं रहेगा।

इसी सुख को मोक्ष का सुख कहते हैं। लो! अन्तिम शब्द है न? 'सो सिव -सुखँ भणंति' यह चौथा पद है। उसे मोक्ष के सुख की वानगी (नमूना) कहते हैं। माल ले, तब वानगी कुछ होती है न? तो उसकी जाति की वानगी होती है या नहीं? वानगी को क्या कहते हैं? नमूना। रूई का बड़ा ढेर हो तो थोड़ा पाव सेर निकाल कर - ऐसा देखते हैं। इसी प्रकार आत्मा आनन्द का महापिण्ड है। उसे पुण्य-पाप के विकल्पों की रुचि छोड़कर और आश्रय छोड़कर स्वरूप में जा (तो) उस आनन्द के पिण्ड में से तुझे आनन्द के नमूने का वेदन होगा और वह आनन्द का नमूना पूर्ण मोक्षसुख का कारण है - (ऐसा) तुझे ख्याल में आयेगा। मोक्ष में पूर्ण आनन्द है, उसका यह थोड़ा सा नमूना है। समझ में आया?

यह तो योगसार है। एकदम सार वस्तु रखी है। मोक्ष का सुख आत्मा का पूर्ण स्वाभाविक सुख है, जो सिद्धों को सदा काल निरन्तर अनुभव में आता है। ऐसे सुख का उपाय भी आत्मिक आनन्द का अनुभव करना है। सुखी

आत्मा ही पूर्ण सुखी होता है। यह थोड़ा न्याय डाला है। क्या कहा? उस ओर है। सुखी आत्मा पूर्ण सुख का कारण होता है। दुःख अन्दर वेदे और पूर्ण मोक्ष का कारण होगा? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के आनन्द का अनुभव लेने पर वह सुखी आत्मा सुख का उपाय - पूर्ण सुख का कारण होता है। क्या कहा? समझ में आया? यह पाठ फिर ऐसा आया न? 'जं विंदहिं साणंदु क वि, सो सिव-सुखँ भणंति' इसलिए जरा स्पष्टीकरण किया। सुखी आत्मा ही पूर्ण सुखी होता है। दुःखी आत्मा पूर्ण सुखी होगा? सुखी भगवान आत्मा, स्वयं का दर्शन किया, दर्शन किया, अवलोकन किया और स्थिर हुआ। यह तीन हुए - श्रद्धा, ज्ञान, और चारित्र।

अपना स्वरूप पूर्ण शुद्ध आनन्द का दर्शन किया अर्थात् रुचि हुई; अवलोकन किया ज्ञान किया; स्थिर हुआ, तब उसे आनन्द की प्रगट दशा की वानगी मिली। उस वानगी की दशा सुखी होती हुई पूर्ण सुखी होगी। उस पूर्ण सुख के मोक्ष को वही साध सकेगी - ऐसा कहते हैं। अन्दर कष्टदायक (नहीं है)। अरे... अपवास किया और कष्ट हुआ न... अरे...! यह तो आर्तध्यान है। यह धर्मध्यान है? ऐसा कहते हैं। यह अपवास किया, (तब) भाई को बहुत परीषह आया था, हाँ! और बहुत परीषह सहन हुआ (इसलिए) निर्जरा बहुत (हुई)। किसकी निर्जरा, धूल की... उसे अरुचि तो लगी है, वह तो आर्तध्यान है। आर्तध्यान में सहन कहाँ किया था? वह तो दुःख है, दुःखी हुआ आत्मा सुख की पूर्ण दशा को साधेगा? सुखी हुआ आत्मा पूर्ण सुख को साधेगा। समझ में आया? आहा...हा...! कठिनता से पूरी करे.... कष्ट क्रिया कर-करके यह महाव्रत पालना, यह दया पालना, पूरा किया, पूरा करने दो न अब, यह तो खेद है, यह तो दुःख है। यह तो कष्ट है, अरुचिकर है, आर्तध्यान है, पाप करना है। इस परिणाम से, इस दुःख के परिणाम से,

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३..)

परमागमसार बोल नं-२२८ पर
पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन दि: २४-०४-१९८३

जब तक अंतर में ऐसा नहीं भासित होता कि पैसे में सुख नहीं है, पुण्य-पाप में सुख नहीं है - तब तक जीव आत्म-सुख के लिए पुरुषार्थसा नहीं होता। परमागमसार-२२८

(परमागमसार, बोल) २२८। 'जब तक अंतर में ऐसा नहीं भासित होता कि पैसे में सुख नहीं है, पुण्य-पाप में सुख नहीं है - तब तक जीव आत्म-सुख के लिए पुरुषार्थसा नहीं होता।' बिलकुल नाड़ी पकड़ी है ! जगत के जीव कहाँ पुरुषार्थसे होते हैं यह (गुरुदेवश्री को) पता है। भले ही खुद अभी उस रास्ते पर नहीं गये, इस भव में तो शुरु से त्यागी जैसी स्थिति रही है। (फिर भी कहते हैं कि) जब तक जगत के पदार्थ में सुख है ऐसा भासित होगा, तब तक जीव जगत के पदार्थों के पीछे पुरुषार्थसा रहेगा, ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थसा रहना मतलब ? कि पूरा-पूरा कूद जाएगा ! पूरा का पूरा समर्पित होकर इसके पीछे लगा रहेगा ऐसा कहते हैं।



कहते हैं कि इस परिस्थिति को पूरी बदलनी होगी। पहली बात तो है कि, पैसे में सुख नहीं है। लीजिए, कैसे मानना ? पैसे में सुख नहीं है - (यह) हम कैसे माने ? हर कदम पर इसकी जरूरत पड़ती है।

मुमुक्षु:- पैसे होंगे तो 'भाई' कहकर (आदरपूर्वक) बुलायेंगे !

पूज्य भाईश्री :- वरना क्या कहकर बुलायेंगे ? अरे...! चाहे कुछ भी कहकर बुलाये, तुझे क्या जरूरत है कि कोई ऐसे बुलाये ? तुझे 'भाई' कहकर बुलवाना क्यों है ? यह सवाल है। यह 'भाई' कहकर बुलवाने में तू पूरा-पूरा मर जाएगा इसका क्या ? 'भाई' कहलाने में

वहाँ तेरी हत्या होती है ! तेरे चैतन्य प्राण की, ज्ञान-आनंद प्राण की हत्या होती है !!

गुरुदेव एक काले कुत्ते का दृष्टांत देते थे। - पता है ? घर में देवरानी-जेठानी का झगड़ा हो तब गालियाँ देती थी कि 'तू काले कुत्ते की बहू है' वह काला कुत्ता बाहर बैठा-बैठा सुने कि, हाँ ! बहुत अच्छी बात करती है ! (वह) कहीं खाने नहीं जाता ! न तो किसी के घर जाये, बस ! वहीं पर बैठा रहता। (दूसरे) दो-चार कुत्ते मिले (तो उन लोगों को लगा) कि यह तो पतला हो गया

है और हड्डियाँ दिखने लगी, यह सब क्या है ? (तब उस काले कुत्ते ने कहा) 'भले हड्डियाँ दिखती हो, मुझे तो यहीं बैठे रहना है, खाने के लिए भी नहीं जाना।' (उसने पूछा) क्यों ? (तो कहा) 'ऐसा सुनने जो मिलता है !' वैसे यहाँ इस जीव को 'भाई' सुनने मिलता है न ! इसमें वह चकनाचूर हो जाता है, यह उसे पता नहीं रहता। 'भाई' सुनने में भाईसाहब की यह हालत है, भाई ! काले कुत्ते जैसी उसकी दशा है !

वैसे भी मनुष्य पर्याय में मान जो है (वह) मार डालता है ! मान है वह मार डाले ! (श्रीमद्जी लिखते हैं) 'मान नहीं होता तो मोक्ष हथेली में होता।'

प्रश्न :- मान के बाद अहम् आता होगा न ?

समाधान :- अहम् खुद ही मानस्वरूप है। मान और अहम् में (कहाँ) अंतर है ? अहम् कहो चाहे मान कहो सब एक ही है। यह तो क्या है पैसे के साथ-साथ जो मान मिलता है न ! (लेकिन) काफी पैसेवालों को मान नहीं भी मिलता है। उसका उपनाम कुछ और ही होता है ! जो अपमान स्वरूप हो ! अतः यह तो एक जाति की कर्मप्रकृति का उदय हो (तब ऐसा लगता है)। (वरना यह भी संभव है) कि पैसे कम हो, पैसे उतने न हो (फिर भी) मानपान मिलता हो। जिस क्षेत्र में काम करता हो वहाँ मानपान मिलता है।

जगत में अनेक पदार्थ खरीदने का माध्यम जो धन है, चलन है, पैसा है। अनेक चीजों की, सर्व चीजों की खरीदारी इससे होती है। इसलिए उसकी मुख्यता है। और उन विभिन्न चीजों से अपनी अनुकूलताएँ बनी रहती हैं और प्रतिकूलताएँ दूर होती हैं। इसलिए पैसे से सुख है - ऐसा माना जाता है।

यह भगवान कहते हैं कि पहले बात यह है। (तू) नक्की कर, पैसे में सुख नहीं है यह नक्की कर ! और जब तक तेरा यह नक्की नहीं होगा तब तक तु पैसों के प्रति या बाह्य पदार्थों के प्रति रहे अपने झुकाव को पलटकर आत्मा के लिए पुरुषार्थवंत हो सकेगा, यह नामुमकिन है। आदमी ऐसा (भी) करता है, करोड़पति, अरबपति, आदमी

दीक्षा ले ले, फिर तो उसने पैसे में सुख नहीं है यह माना कि नहीं माना ? माना ? मानना दूसरी बात है, भाई ! मानना दूसरी बात है। ऐसा त्याग करे फिर भी उसने पैसे में सुख नहीं है, ऐसा (नहीं माना हो) यह संभव है।

पैसे में सुख नहीं है ऐसा तो वास्तव में तब माना है जब उसने आत्मा में सुख माना हो। जब यह जीव आत्मा में सुख है ऐसा मानेगा तब वह जीव आत्मामें से ही सुख भोगने के लिए पुरुषार्थवंत होगा और जब तक आत्मिक सुख की प्राप्ति का भीतर में पुरुषार्थ नहीं करेगा तब तक भले ही उसने धन, वैभव का त्याग किया हो फिर भी उसने अभी उसमें सुख माना है। वह मानने का प्रकार दूसरा है। वरना ऐसा लगे कि यह कैसे समझना ? स्पष्ट दिख रहा है पैसे का त्याग किया ! इतने पैसे थे और पैसे छोड़ दिये परंतु 'मैंने छोड़ा' (ऐसी जो मान्यता है) वह वास्तव में छोड़ा नहीं है (परंतु) पकड़ा है !! क्या किया (उसने) ? ये पैसे 'मैंने छोड़े' इसमें जीव ने 'अपनत्व' रखकर छोड़ा है ! 'मेरे थे और मैंने छोड़ दिये' इसमें अपनत्व उसने अभी कायम रखा है। छोड़ दिया वह तो बाहर में क्रिया हो चुकी। छोड़ने की अंतरंग क्रिया नहीं हुई।

यहाँ कहते हैं कि बाह्यत्याग, बाह्यनिवृत्ति वह अंतरंग निवृत्ति के हेतुपूर्वक है या अंतरंग निवृत्ति के प्रयोजनवश यदि बाह्यत्याग और बाह्यनिवृत्ति होगी तो उसकी सार्थकता है। परंतु अगर अंतरंग प्रयोजन की सिद्धि न हो तो किया हुआ बाह्यत्याग नहीं करने के बराबर है, किया लेकिन नहीं किया बराबर है। वास्तव में उसने किया ही नहीं है - ऐसा भगवान कहते हैं।

गुरुदेवश्री एक बार सुबह शौच के लिए जा रहे थे, (तब) साथ में जाते थे, (क्योंकि) वे बाहर जंगल में जाते थे। करीब २० साल पहले की बात है। रास्ते में सब मौन होकर चल रहे थे। १०-१५ लोग थे। अचानक ही (गुरुदेवश्री) बोले कि, 'द्रव्यलिंगी मुनि निवृत्त हुआ ही नहीं, बिलकुल निवृत्त नहीं हुआ है।' जबकि उसने सर्वथा प्रवृत्ति छोड़ दी है, बड़ा राजा हो लेकिन राजपाट (त्याग)

किया हो - इसका मतलब क्या हुआ ? कि जिसका शुद्धात्मा में प्रवेश नहीं है और स्वरूपलीनतापूर्वक जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट नहीं किये, वह बाहर से निवृत्त हुआ हो तो भी वह वास्तव में निवृत्त नहीं हुआ। (द्रव्यलिंगी मुनि का) तो उत्कृष्ट - समर्थ दृष्टांत है। फिर नीचेवाले को तो समझ लेने की बात है। त्याग किया हो तो उसे कितना तुल्य देना ! इसमें कोई तुल्य देने जैसा प्रसंग नहीं है।

पैसे में सुख नहीं है यह 'भासित' होना चाहिए, पुण्य-पाप के परिणाम में सुख नहीं है ऐसा अंतर में 'भासित' होना चाहिए। पुण्य के मंदराग में जब आकुलता कम हो तब सुख लगे, शाता का वेदन हो या इच्छित विषय की प्राप्ति में उस विषय को भोगने में मजा है, सुख है, आनंद है, खुशी है, प्रसन्नता है (ऐसा अगर लगता है तो) उस पाप के परिणाम में सुख माना है।

कषाय की मंदता में उत्पन्न मंद कषाय के मंद राग के परिणाम जिसको शाता का वेदन है - उसने पुण्य के परिणाम में सुख माना है। भोग-उपभोग के परिणाम में सुख, मजा और आनंद माननेवाले ने पाप के परिणाम में सुख माना है। बाहर में जो भी पैसे यानी कि धन, वैभव, कीर्ति, आबरू सब इसमें ले लेना। (इन सबकी हयाती से तुझे ऐसा लगता हो कि) 'यह है तो मुझे ठीक है और दिक्कत नहीं बल्कि अनुकूलता है और अब मुझे किसी की परवाह नहीं है' - (यहाँ) कहते हैं कि ये सब तुझे आत्मा में नहीं जाने देंगे, ये सब तुझे आत्मा के दर्शन नहीं करने देंगे। क्योंकि भावभासन ज्ञान में होता है।

जहाँ सुख नहीं है वहाँ सुख भासित होना - मतलब भ्रांतिवशात् वह सुख भासित होता है। किसकी वजह से भासित होता है ? (भ्रांति की) ! ऐसी इस जीव को भ्रमणा हो गई है। इस भ्रमणा के कारण उसको सुख लगता है। है नहीं फिर भी लगे इसका मतलब क्या ? कि जीव को भ्रमणा हो गई है।

जिस जड़ पदार्थ में सुख तो क्या सुख की गंध भी नहीं है, इसमें तुझे भरपूर सुख लगना, इसकी गर्मी रहना

जैसे यह है तो मुझे अच्छा है, ऐसे इसकी हयाती की सभानता के परिणाम तुझे जो हैं न ! (वे तुझे आत्मा में नहीं जाने देंगे।) पूँजी को कोई गिनने नहीं बैठता कि चलो सुबह-सुबह उठते ही माला गिन लो ! पाँच माला पूँजी की गिन लो ! हमारी पूँजी कितनी है ? उगाही में कितनी ? माल में कितनी ? बैंक में कितनी ? लेकिन इसके भान में ही रहता है कि 'मैं इतना', 'मैं ऐसा', 'मेरे पास इतना... इतना...' कहते हैं (कि) अपनत्व सहित इसकी हयाती का भान रहना यह तेरे स्व-भान को भूलने में कारणभूत है। तेरे भान में वह (चीज) नहीं और उसके भान में तेरा अपना भान नहीं ! यह परिस्थिति होती है।

इसलिए ऐसा कहते हैं कि जब तक पैसे में सुख नहीं है ऐसा भासित न हो, 'अंतर' में भासित न हो, इसकी बात है ! ऊपर से कह दे सो बात नहीं, शास्त्र के आधार से कहे सो नहीं, न्यायपूर्वक विचार कर 'हाँ' करे इतना भी नहीं, वरना यहाँ तक तो अपने यहाँ चलता है। गुरुदेवश्री की कृपा से अपने यहाँ मुमुक्षुओं शास्त्र-स्वाध्याय तो करते हैं, इतना ही नहीं विचारपूर्वक न्याय से सम्मत करके भी कहते हैं कि, ठीक बात है - सुख आत्मा में है, बाह्य पदार्थ में सुख नहीं है। यह सत्य कहा कि नहीं ? (कहते हैं कि) जब तक अंतर में वैसा भासित न हो तब तक उसकी कही हुई बात सत्य नहीं है। भले ही सत्य कहे तो (भी) सत्य नहीं है। किसीने सच कह दिया इसलिए सत्य हो गया - ऐसा यहाँ नहीं है। लेकिन इतना स्पष्ट कहता हो फिर भी सच्चा नहीं ? तो पहले देखना तो यह है कि ऐसा उसे अंतर में भासित हुआ है कि नहीं।

तोता भी दो और दो चार बोलेगा। तोते को बोलना सिखा दिया जाये कि दो और दो चार... दो और दो चार... बोलता है कि नहीं ? तो क्या उसका दो और दो का जोड़ चार सही है क्या ? परंतु उसे पता नहीं है कि जोड़ लगाना मतलब क्या ? वह तो बोलता है जो उसको रटाया गया है। वैसे शास्त्र से कोई (जीव इस बात को) विचारपूर्वक सम्मत कर ले, रट ले, सीख ले, सिर्फ पढ़ ले इतना ही नहीं विचारपूर्वक सम्मत भी कर ले, फिर भी

अगर अंतरंग में भासित न हो (तो वह विचार से सम्मत किया हुआ भी सत्य नहीं है)। यहाँ एक शब्द बहुत अच्छा लिया है - 'जब तक अंतर में ऐसा नहीं भासित होता...' ऐसे लेना है। यह इसकी वास्तविकता है।

यदि अंतर में भासित नहीं होता है तो जीव ने विचार से, न्याय से, आगम से, तर्क से, तर्कणा द्वारा शुद्ध करके - तर्कशुद्ध करके माना हो तो भी यहाँ (उसकी) स्वीकृति नहीं दी जाती है कि उसने यह माना है। ऐसा नहीं माना जाएगा, यों कहते हैं। और तब तक उसे इसका लाभ नहीं होता। यानी कि तब तक यह जीव मुख बदलकर (अर्थात्) बहिर्मुख परिणमन जो कर रहा है, उसे पलटकर अंतर में आत्मा में जो सुख पड़ा है उसमें लीन होने के लिए पुरुषार्थसा नहीं होगा।

'पुरुषार्थसा नहीं होता।' ऐसे शब्द लिये हैं। (पुरुषार्थसा) मतलब जोर से लगता है। (यानी कि) जो जीव आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए अंदर में आता है वह भी इतने बलपूर्वक आता है, बहुत वेगपूर्वक आता है। जोरपूर्वक वह मिथ्यात्व का यध्वंस करता है, जोरपूर्वक मिथ्यात्व का त्याग करता है और सम्यक्त्व को अंगीकार करता है। वास्तविकता तो ऐसी है। इसलिए आत्मा में झुका दिया ऐसा कहा जाता है। क्योंकि प्रथम सम्यक्त्व होते ही उसी समय स्वरूपलीनता उत्पन्न होती है, शुद्धोपयोग होता है, आत्मस्थिरता वहाँ प्रगट होती है। सम्यक्त्व हो तब आत्मस्थिरता होना - यह दोनों एक साथ अविनाभावीरूप से होता है। आगे-पीछे नहीं अपितु अविनाभावीरूप से होता है। वह तीव्र पुरुषार्थ से आत्मा में आता है।

(दोनों कार्य) गुण भेद से अलग हैं। सम्यक्त्व के साथ अनंत गुणों का परिणमन है। 'सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व' - आत्मा के अनंत गुणों के अंश शुद्ध हुए, निर्मल हुए उसे सम्यक्त्व कहा है। श्रीमद्जी ने यह परिभाषा की (है) - 'सर्व गुणांश ते सम्यक्त्व' जो शुद्धोपयोग होता है वह स्वरूपाचरण चारित्र है। ज्ञान स्वसंवेदनरूप परिणमन करे वह सम्यक्ज्ञान है और आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति हो,

उसे सम्यक् श्रद्धान कहा जाता है। इस प्रकार सम्यक्श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता हुई। परिणाम एक है जिसमें अनंत गुणों का परिणमन है। इसलिए उसका अनेक भेदों से वर्णन आता है। गुणभेद की अपेक्षा से एक ही धर्म के परिणाम का अनेक भेद में वर्णन आता है। इसका यही कारण है। (क्योंकि) उसमें अनंत गुण मौजूद हैं। सम्यक्त्व हुआ मतलब (वह जीव) अनंत गुणवंत हुआ। यदि तुझे गुण की रुचि हो, यदि तुझे गुण की अभिलाषा हो तो इस सम्यक्त्व को अंगीकार करने जैसा है कि जिसमें अनंत गुण प्रगट होंगे।

इसलिए ऐसा कहते हैं कि स्वरूप में लीनता जो होती है वह तीव्र पुरुषार्थ से होती है। क्यों यह सारा वर्णन किया जाता है ? ऐसे-ऐसे वर्णन करने के पीछे भी शास्त्र में हेतु है। सम्यक्त्व के विषय में भी लोगों ने विभिन्न कल्पनाएँ की हैं। हमारा जन्म जैन कुल में हुआ इसलिए हम तो मूल में जैन कुल के हैं इसलिए हमें सम्यग्दर्शन तो है ही इसमें कोई सवाल ही नहीं है। हम तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र को माननेवाले हैं, दूसरों को तो हम स्वप्न में भी न माने। हालाँकि अभी तो काफी गड़बड़ चलती है। लेकिन दूसरे को स्वप्न में भी न माने, तो भी वह सम्यक्त्व नहीं है। अरे ! यहाँ तक कहते हैं कि अब तो हमें व्रत, पचखान अंगीकार करके आगे बढ़ना है, सम्यक्त्व तो हमें है ही ! भाई ! सम्यक्त्व ऐसे नहीं होता।

इसलिए पूछते हैं कि भाई ! तुझे स्वरूपलीनता हुई है ? तुझे आत्मा का भान वर्तता है ? तुझे स्वसंवेदन की ज्ञाताधारा प्रगट हुई है ? प्रगट वैसा परिणमन चलता है ? अगर यह सब है तो वह सम्यक्त्व के सद्भाव की द्योतक बातें हैं। वरना वह एक भी बात सही नहीं। जिसको सम्यक्त्व नहीं है उसका सब उलटा और जिसको सम्यक्त्व है उसका सब सुलटा। जैसे उलटे घड़े पर सब उलटे ही रहते हैं और सुलटे घड़े पर सब सुलटे रहते हैं, ऐसा है।

मुमुक्षु :- सम्यक्त्व में सब सुलटा - यह बहुत बड़ी बात है !

पूज्य भाईश्री :- उसका सब सुलटा ! उसके सभी

परिणाम ज्ञानमय बतलाये हैं। साधकजीव को पुण्यभाव आये तो उसे भी ज्ञानमय परिणाम कहा (है), क्यों ज्ञानमय परिणाम कहा ? कि यह पुण्यतत्त्व है, मेरे आत्मा से यह बहिर्तत्त्व है, यह आत्मा को इससे कोई लाभ नहीं है, (ऐसा भान वर्तता है)।

जैसे पैसे में सुख नहीं है वैसे पैसे मिलने का कारण पुण्यभाव में भी सुख नहीं है और लाभ नहीं है। वहाँ तो कारण-कार्य का संबंध है। पैसे से सुख और लाभ नहीं है वैसे पैसे मिलने के कारणभूत जो परिणाम हैं उसमें भी सुख और लाभ नहीं है, ऐसा जब तक अंतर में भासित नहीं होता...! 'अंतर में ऐसा नहीं भासित होता...' देखो ! कैसी भाषा ली है। 'तब तक जीव आत्म-सुख के लिए पुरुषार्थ-सा नहीं होता।' यह तो बोली गई भाषा को लिख लिया है न तब तक वह आत्मा अंदर में आत्म-सुखरूप परिणामन नहीं करेगा, पुरुषार्थसा नहीं होगा। अर्थात् क्या कहना है ?

जीव का अनादि से जो वेग है वह पर पदार्थ में सुख (के निश्चय के) कारण है। राग और राग के फल में सुख है ऐसा जीव को अनादि से निश्चय वर्तता है। यह जब तक आत्मा में सुख के अवभासनपूर्वक छूटे नहीं (यानी कि) 'विचार' से छूट गया वैसे नहीं परंतु अंतर में सुख भासित हो तब छूटे, (ऐसा कहना है)। इसके पहले इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

आत्मा अनंतानंत सुख से भरा है। उसकी जो हयाती है - सुख की जो विद्यमानता है, वह विद्यमानता जो 'है' उसकी हयाती का स्वीकार करे नहीं, यानी कि ज्ञान में वह मालूम न हो, भासित न हो, स्वीकार न हो तब तक विपरीत दिशा - विपरीत बात जो पैदा हुई है और कायम रही है वह छूट नहीं सकती। इसके छूटने का अन्य कोई उपाय नहीं है और तब तक चाहे कुछ भी (करे), इसको छोड़कर और कुछ भी करे, वह एक भी सही नहीं है - एक भी सही नहीं। मूल में यह बात है कि अंतर में जो सुख है वह तुझे भासित होता है ? यह बात है। अस्ति से लिया है कि क्या अंतर में सुख है यह भासित हुआ है ?

श्रीमद्जी ने बहुत सुंदर पैरा लिखे हैं। इसमें एक बहुत सुंदर बात लिखी है। यूँ ही डायरी लिखते हो वैसे ही लिखे हैं। हे जीव ! तू भ्रम में मत पड़। ऐसे खुद को संबोधन करके नहीं लिखते हो वैसे ! हे जीव ! तू भ्रम में मत पड़। तुझे हित की बात कहता हूँ, कुझे सत्य कहता हूँ : सुख अंतर में है, सुख आत्मा में है, तेरा सुख अन्यत्र कहीं नहीं। आता है ? (पत्रांक : १०८) पैरा आते हैं, बहुत अच्छे आये हैं ! अतः अपने सुख को ढूँढ़ने व अपने सुख का अनुभव करने तू कहीं बाहर मत जाना। इतनी बात है।

भीतर में कैसा आत्मिक सुख पड़ा है इसकी (जीव को) कल्पना नहीं है। मूल में तो जगतवासी जीव को अनुकूलता में कषाय की मंदता हो वह सुख और प्रतिकूलता में कषाय की तीव्रता हो, वह (दुःख)। तीव्र आकुलता मतलब दुःख और मंद आकुलता मतलब सुख - बस ! इतना नक्की किया हुआ है, अतः वैसी ही कल्पना करता है। (यहाँ) कहते हैं कि, वहाँ तो दोनों में दुःख है, दोनों आकुलता है। तीव्रता और मंदता दोनों आकुलता के भेद हैं। उसमें कहीं भी निराकुलता नहीं है।

भीतर में जो आत्मा का निराकुल सुख है, वह सुख तो अनंत है और इस सुख की शुरुआत होने के पश्चात् अनंत सुख की प्राप्ति हुए बिना रहती नहीं। ऐसा जो अंतर का आत्मिक सुख है, जिसमें जीव को तृप्ति होती है - यह उसके माने हुए सुख में उसे कभी तृप्ति नहीं होती। जो कि सुख नहीं है यह उसका उपलक्षण है।

'पश्चात् दुःख ते सुख नहीं' 'बहु ण्य केरा पुंजथी' (काव्य में) श्रीमद्जी ने १६ साल की उम्र में यह गाया है कि 'पश्चात् दुःख ते सुख नहीं'। वह सुख नहीं है। भीतर में आत्मा को तृप्ति हो ऐसा जो सुख है वही सुख (है)। इस सुख की विद्यमानता अंतर में भासित न हो तब तक जितने जोर से अंदर में आना है - एकदम अंतर्मुख होकर, वेग सहित - पुरुषार्थ सहित जो अंतर्मुख होना है, वह पुरुषार्थ तेरा उत्पन्न नहीं होगा और जो वर्तमान वीर्य गुण का क्षयोपशम - पुरुषार्थ उलटा चलता है (अर्थात्

(पृष्ठ संख्या १२ से आगे...)

बहिर्तत्त्व की प्राप्ति का, जुटाने का और इसे भुगतने के लिए तेरा जो पुरुषार्थ उलटा जाता है, वह तेरा पुरुषार्थ मिटेगा नहीं। उलटा पुरुषार्थ (जब) दिशा पलटकर सुलटा हो तब वह आत्मा में 'पुरुषार्थ-सा' हुआ ऐसा कहा जाये, परंतु जो बाहर में उदय प्रसंगों में कूद पड़ता हो वह अंदर में नहीं आ सकता। अतः बहुत मार्मिक पद्धति से यह बात ली है। इस जीव को अपनेआप से एक प्रश्न पूछने जैसा है कि तुझे क्या अनुकूलता में अंतरंग से सुख का अनुभव होता है? क्या तुझे बाहर में पैसे आदि की प्राप्ति होती है, संयोगों की वृद्धि होती है - उसमें अच्छापना लगता है ? (यदि लगता है) तो तू अंतर में पुरुषार्थपूर्वक नहीं जा पाएगा।

यह प्रश्न भी पूछने जैसा है कि क्या अंतर में जो अनंत सुख भरा है, इसकी विद्यमानता तुझे भासित होती है ? इतनी बात है। यदि ये सारे सुमेलवाले पहलू स्पष्ट नहीं होंगे तो दूसरा कुछ भी करना नहीं करने के बराबर है। इस एक ही जगह जीव को अपनी शक्ति लगानी चाहिए। दूसरे-दूसरे कार्य में नहीं लगानी चाहिए। इस तरह बहुत अपने को लागू हो वैसा यह २२८ वाँ बोल है। यहाँ तक रखते हैं।

(पृष्ठ संख्या ०७ से आगे...)

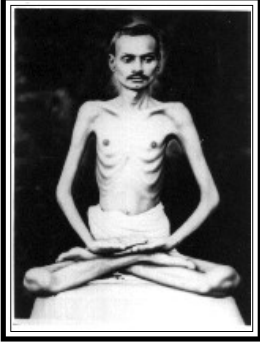
पूर्ण सुख का स्वरूप - मोक्ष मिलेगा? इसलिए कहते हैं कि सुखी आत्मा ही पूर्ण सुखी होता है। आहा...हा...! कहो, इसमें समझ में आया? भगवान सुखी आत्मा की बात (कही), वह पर्याय की बात है, हाँ! सुखी तो त्रिकाल है आत्मा। उसकी दर्शन-ज्ञान और अवलोकन की स्थिरता होने पर जो सुखदशा हुई, वह सुखी, पूर्ण सुख को प्राप्त करेगा। दुःखी पूर्ण सुख को प्राप्त करेगा? आर्तध्यान में आया हुआ, राग में आया हुआ, अरुचि में आया हुआ, वह मोक्ष की ओर जाएगा? समझ में आया? आहा...हा...!

छहढाला में आता है न? भाई! नहीं? वैराग्य में दुःख लगता है, नहीं आता, कष्टदान... क्या? 'आतमहित हेतु वैराग्य ज्ञान... कष्टदान' भाई! चारित्र तो कष्टदायक है, यह बालू के ग्रास जैसा है। बालू... यह चारित्र ऐसा होगा? भाई! तुझे पता नहीं है, भाई! चारित्र तो आनन्ददाता है, उसे तू दुःखदाता माने तो तुझे चारित्र के गुण की, श्रद्धा की खबर नहीं है, समझ में आया? छहढाला में बहुत बात ली है।

(शेष अंश अगले अंकमें...)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अप्रैल-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस विशेषांक की समर्पण राशि स्व. ललिताबहिन देसाई के स्मरणार्थ हस्ते श्रीमती ज्योतिबहिन उदाणी तथा वर्षाबहिन हेमाणी की ओर से साभार प्राप्त हुई है। अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।



परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित
आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३३८

बंबई, फागुन सुदी १३, शुक्र, १९४८

परिणामोंमें अत्यंत उदासीनता परिणमित होती रहती है।

ज्यों-ज्यों ऐसा होता है, त्यों-त्यों प्रवृत्ति-प्रसंग भी बढ़ते रहते हैं। अनिर्धारित प्रवृत्तिके प्रसंग भी प्राप्त हुआ करते हैं; और इससे ऐसा मानते हैं कि पूर्व निबद्ध कर्म निवृत्त होनेके लिये शीघ्र उदयमें आते हैं।

*

पत्रांक ३३९

बंबई, फागुन सुदी १४, १९४८

किसीका दोष नहीं है, हमने कर्म बाँधे इसलिये हमारा दोष है।

ज्योतिषकी आमनाय संबंधी कुछ विवरण लिखा, सो पढ़ा है। उसका बहुतसा भाग ज्ञात है। तथापि चित्त उसमें जरा भी प्रवेश नहीं कर सकता, और तत्संबंधी पढ़ना व सुनना कदाचित् चमत्कारिक हो, तो भी बोझरूप लगता है। उसमें किंचित् भी रुचि नहीं रही है।

हमें तो मात्र अपूर्व सत्के ज्ञानमें ही रुचि रहती है। दूसरा जो कुछ किया जाता है या जिसका अनुसरण किया जाता है, वह सब आसपासके बंधनको लेकर किया जाता है।

अभी जो कुछ व्यवहार करते हैं, उसमें देह और मनको बाह्य उपयोगमें प्रवृत्त करना पड़ता है। आत्मा उसमें प्रवृत्त नहीं होता। क्वचित् पूर्वकर्मानुसार प्रवृत्त करना पड़ता है, जिससे अत्यंत आकुलता आ जाती है। जिन कर्मोंका पूर्वमें निबंधन किया गया है, उन कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये, उन्हें भोग लेनेके लिये, अल्प कालमें भोग लेनेके लिये, यह व्यापार नामके व्यावहारिक कामका दूसरेके लिये सेवन करते हैं।

अभी जो व्यापार करते हैं उस व्यापारके विषयमें हमें विचार आया करता था, और उसके बाद अनुक्रमसे उस कार्यका आरंभ हुआ, तबसे लेकर अब तक दिन प्रतिदिन कार्यकी कुछ वृद्धि होती रही है।

हमने इस कार्यको प्रेरित किया था, इसलिये तत्संबंधी.....यथाशक्ति मजदूरी जैसा काम भी करनेका रखा है। अब कार्यकी सीमा बहुत बढ़ जानेसे निवृत्त होनेकी अत्यंत बुद्धि हो जाती है। परंतु.....को दोषबुद्धि आ जानेका सम्भव है; वह अनंत संसारका कारण.....को हो ऐसा जानकर यथासंभव चित्तका समाधान करके वह मजदूरी जैसा काम भी किये जाना ऐसा अभी तो सोचा है।

इस कार्यकी प्रवृत्ति करते समय हमारी जितनी उदासीन दशा थी, उससे आज विशेष है। और इसलिये हम प्रायः उनकी वृत्तिका अनुसरण नहीं कर सकते; तथापि जितना हो सकता है उतना अनुसरण तो जैसे-तैसे चित्तका समाधान करके करते आये हैं।

कोई भी जीव परमार्थकी इच्छा करे और व्यावहारिक संगमें प्रीति रखे, और परमार्थ प्राप्त हो, ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। पूर्वकर्मको देखते हुए तो इस कार्यसे निवृत्ति अभी हो ऐसा दिखायी नहीं देता।

इस कार्यके पश्चात् 'त्यागे' ऐसा हमने तो ज्ञानमें देखा था; और अभी ऐसा स्वरूप दीखता है, इतनी आश्चर्यकी बात है। हमारी वृत्तिको परमार्थके कारण अवकाश नहीं है ऐसा होनेपर भी बहुतसा समय इस काममें बिताते हैं; और इसका कारण मात्र इतना ही है कि उन्हें दोषबुद्धि न आये। तथापि हमारा आचरण ही ऐसा है, कि यदि जीव उसका ख्याल न कर सके तो इतना काम करते हुए भी दोषबुद्धि ही रहा करे।

*

पत्रांक ३४०

बंबई, फागुन सुदी १५, रवि, १९४८

जिसमें चार प्रश्न लिखे गये हैं, तथा जिसमें स्वाभाविक भावके विषयमें जिनेंद्रका जो उपदेश है उस विषयमें लिखा है, वह पत्र कल प्राप्त हुआ है।

लिखे हुए प्रश्न बहुत उत्तम हैं, जो मुमुक्षु जीवको परम कल्याणके लिये उठने योग्य है। उन प्रश्नोंके उत्तर बादमें लिखनेका विचार है।

जिस ज्ञानसे भवांत होता है उस ज्ञानकी प्राप्ति जीवके लिये बहुत दुर्लभ है। तथापि वह ज्ञान स्वरूपसे तो अत्यंत सुगम है, ऐसा जानते हैं। उस ज्ञानके सुगमतासे प्राप्त होनेमें जिस दशाकी जरूरत है उस दशाकी प्राप्ति अति कठिन है, और उसके प्राप्त होनेके जो दो कारण हैं उनकी प्राप्तिके बिना जीवको अनंतकालसे भटकना पड़ा है, जिन दो कारणोंकी प्राप्तिसे मोक्ष होता है।

प्रणाम।

*

विनम्र अपील

“स्वानुभूतिप्रकाश” मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

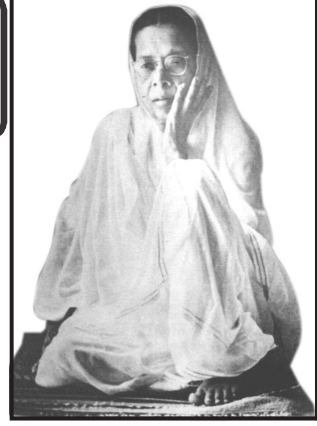
यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सदुपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दे या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव बोरा मो: ९८२५०५२९१३

गुरु गुण संभारणामें से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति
पूज्य बहिनश्री के भक्तिपूर्ण हृदयोद्गार



पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचंभा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परंतु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक - कसदार थी। उनके अंतर में श्रुत की धारा और उनकी वाणीमें भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा - शांतरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो ! पूज्य गुरुदेवश्री तो भरत(क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो ! इस सोनगढ़ में तो ४५-४५ साल तक मूसलधार बारिश की माफिक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेडने के लिये तेज हवा की माफिक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे ! दास तो क्या ? दासानुदास ही हैं। ३.

*

गुरुदेव का जितना करें उतना कम है। चाहे जितना भी करें किन्तु कम है। जो भी करें भाव से करना है, सब भाव से करते हैं।

“शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन” प्रभु के चरणकमल में क्या धरुं ? आत्मा से सब कम है। उनके चरणों के अधीन रहते हैं। मन-वचन-काया से उनके चरणों में अर्पणता करें। तन-मन-धन से जो कुछ भी करें, कम है।

हे प्रभु ! आपके गुणों का गुणगान कौन कर सकता है ! आपकी भक्ति में कैसे करुं !

इन्द्रों कहते हैं कि प्रभु ! मैं आपके गुण-गान गा नहीं सकता। वैसे पूज्य गुरुदेव ने जो किया है उसे भाषा में या वाणी में कहना मुश्किल है। गुरुदेव ने जगह-जगह यात्राएँ, प्रतिष्ठाएँ और अपूर्व तत्त्व बरसाया है, जिसके आगे सब कम है। गुरुदेव का द्रव्य मंगल था। उनके चैतन्य की मंगल प्रभा चारों दिशा में फैल रही थी, पूज्य गुरुदेवश्री (चले) गये लेकिन अपनी मंगलता यहाँ छोड़ते गये हैं। वाणी में उनकी मंगल प्रभा रह गई ! उनकी वाणी में देशनालब्धि थी। उनकी मंगल प्रभा जह फैली हुई हो, ऐसा मिलना मुश्किल है। ५.

*

गुरुदेव यहाँ बिराजमान हैं ऐसा मानना। बहुत सालों तक यहाँ बिराजमान रहे हैं। यहाँ के रजकण पुकार कर रहे हैं। यहाँ उनकी वाणी है। बीच में थोड़ा काल गुरु के वियोग का आ गया। उसकी पूर्ति होकर (यह)

पूरा हो जायेगा।

गुरुदेव हाथ में आ गये, अब नहीं छूटेंगे। बाहरी समीपता भीतर की समीपता को पुकार कर रही है। चैतन्य-चैतन्य की पुकार - गुरुदेव की पुकार चैतन्य के समीप ले जाती है। जिसने चैतन्य के संस्कार अंदर ग्रहण किये हैं, चैतन्य का सिंचन गहराई से करके गये हैं, उस सिंचन की पुकार अंदर से जवाब दिये बिना रहेगी नहीं।

गुरुदेव ने एक-दो दिन नहीं, बरसों तक निरंतर सिंचन किया है कि चैतन्य की बाड़ी सूख नहीं जाये। बाड़ी भीगी - रसयुक्त है वह बाड़ी सूख नहीं जाये बल्कि खिल उठे। जिसने अंदर से ग्रहण किया हो उसे बाहर से पानी नहीं मिलने पर भी वह अंदर से सूखेगी नहीं।

ऐसे गुरु मिले, चैतन्य की अपूर्वता बताई, यह अपूर्वता ग्रहण होवे तो शिष्य होने के पश्चात् भूल कैसे रह जाय? सच्चा दास हो, (तो) उसे अपूर्वता लगती है। उनके चरण में मन-वचन-काया से जिसने अर्पणता की है वह सच्चा दास है, वह मार्ग पर चले बिना रहेगा नहीं। (रह सकेगा नहीं) “शुं प्रभु चरण कने धरूँ...” अर्पणता होने पर तैयारी हुए बिना नहीं रहती। सच्चा दासत्व उसे कहा जाता है कि गुरु मिलने के बाद भव रहे नहीं, (रह सके नहीं)।

६.

*

अब रोज स्वह पूज्य गुरुदेवश्री की टेप बजती है। “मैं ही परमात्मा हूँ... मैं ही परमात्मा हूँ...” यह जब सुनते हैं तो ऐसा ही लगता है कि, गुरुदेव हररोज आकर गगन में वाणी बरसाते जाते हैं - ऐसा लगता है।

७.

*

पूज्य गुरुदेवश्री द्रव्य-दृष्टि की बात कितनी निःशंकता से जोरदार करते हैं। इससे उनका तीर्थकर द्रव्य निश्चित होता है। वर्तमान में कितना प्रभाव दिखता है। द्रव्यदृष्टि का विषय आने पर उछल पड़ते हैं।

१३.

*

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी की गर्जना से गुंजन कर रहा सोनगढ़ जीवंत तीर्थ है। पूज्य गुरुदेवश्री की प्रभावना का उदय कोई अपूर्व... परमागममंदिर की प्रतिष्ठा... महावीर भगवान पधारें, जैसे मानो उत्सव लेकर आये हो। २५००वाँ निर्वाण महोत्सव... गाँव-गाँव में उत्सव होता था। गाँव-गाँव में धर्मचक्र निकले... धर्मचक्र जैसे भगवान के साथ हो और विहार करता हो ऐसा लगता। प्रभातफेरी निकलती थी। परमागममंदिर में भजन की रेकार्ड चालू ही रहती। भगवान ध्वनि साथ में लेकर आये और श्रुत भी साथ में लेकर आये। भगवान विहार करते हो, दिव्यध्वनि छूटती हो, वैसी वाणी लेकर सोनगढ़ में पधारे और वह वाणी दीवार में टंकोत्कीर्ण हो गई। कर्ता-कर्म, ज्ञेय-ज्ञायक सब ध्वनि के रूप में दीवार में टंकोत्कीर्ण हों गया। भगवान की वाणी यहाँ आकर स्थिर हो गई। परमागम को इतना स्पष्ट और प्रसिद्ध करनेवाले गुरुदेव ही हैं।

अभी गुरुदेव ज्ञाता-ज्ञाता की पुकार करते हैं। सबका फैसला करके सीधा रास्ता, विकल्प रहित ऐसे निर्विकल्प आत्मा को बतलाते हैं।

२०.

*



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति पूज्य श्री
निहालचंद्रजी सोगानीजी के हृदयगद्गार

पूज्य गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है। उनका असंगरुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका) कानोंमें गूँजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहाँ की उपाधियाँ ढीली-सी रहती है। उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊँ।...

(पत्रांश-४)

*

हे गुरुदेव ! लोकोत्तर लाभ हेतु आपके वचनों पर श्रद्धा की है, आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ और अनंत पदार्थों के तीनकाल के अनंते भाव वर्तमान एक-एक भाव से अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें - ऐसी तीव्र अभिलाषा है। दरिद्री को चक्रवर्तीपने की कल्पना नहीं होती। पामरदशावाले को 'भगवान हूँ...भगवान हूँ' की रटन लगाना, हे प्रभो ! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है। परिणति को आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान.... भगवान की गुंजार करते आप; अन्य संग नहीं; यह ही भावना।

(पत्रांश-२६)

*

यहाँ तो पूज्य गुरुदेव ने आत्मगढ़ में वास कराकर प्रसाद चखाया है, अतः क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूँ कि : हे विकल्पांश ! तेरे संग अनादि से दुःख अनुभव करता आया हूँ, अब तो पीछा छोड़। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेव की भक्ति-सेवा-गुणानुवाद में ही उनके निकट ही वर्त ! इस क्षेत्र में तो अधिक दुःखदायी है। चूँकि गुरुदेव ने इसकी उपेक्षा कराकर इससे विमुख करवा दिया, अतः यह भी लंबाकर साथ नहीं देता।

(पत्रांश-४२)

*

परम कृपालु गुरुदेवश्री के मुखारविंदसे मुझ संबंधी निकले सहज उद्गार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे, सो जाने।

मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये सहज कृपादृष्टि इस बातका द्योतक है कि अति उमंगभरी मुक्तिसुंदरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनंदमयी अस्खलित, परमगाढ़ आर्लिगनयुक्त रहकर शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।

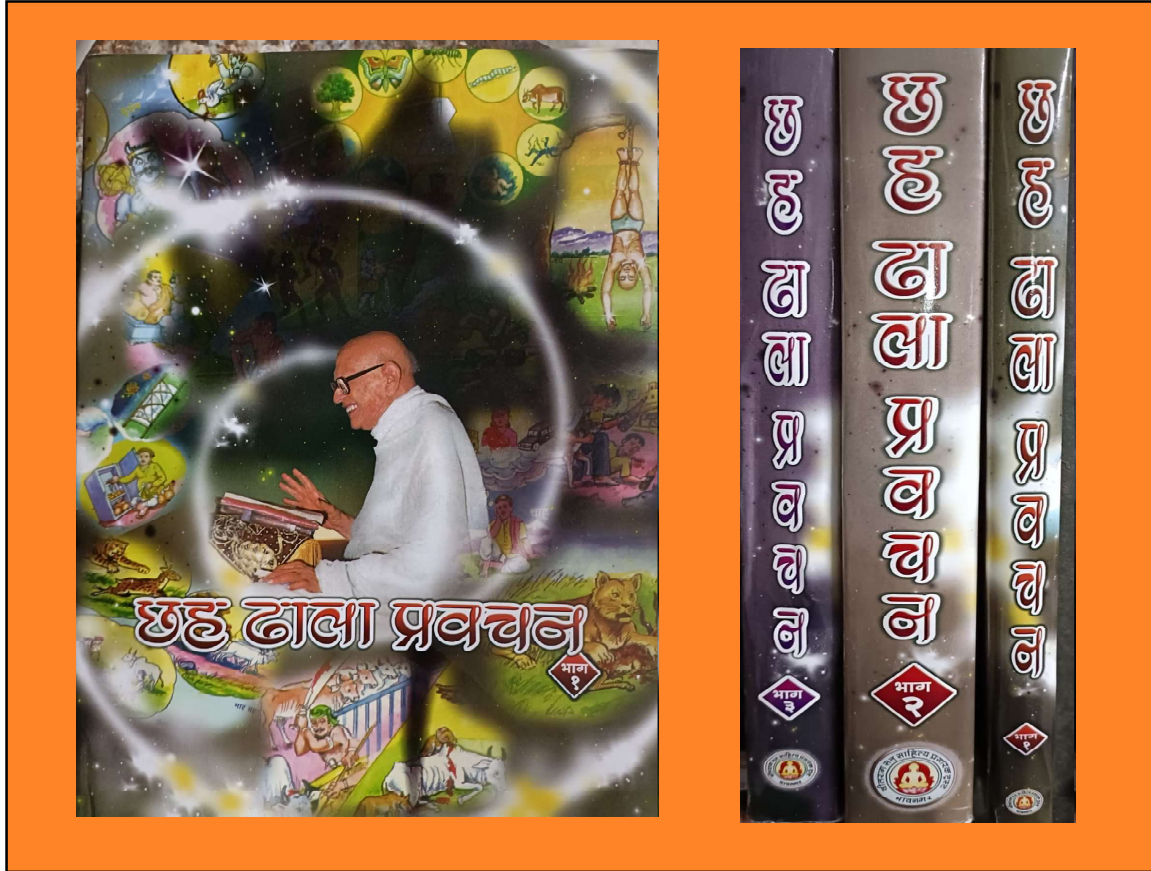
परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मीभण्डार (दृष्टिरूपी चाबी द्वारा खोलकर) भोग हेतु प्रदान किया है, इसे नित्य भोगो, नित्य भोगो, यह ही भावना है।

तीर्थकरयोग सूचित करता है कि सब सज्जन पुत्रगण इस भोगको निःसंदेह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।

(पत्रांश-५१)

*

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १३४ वे मंगलकारी जन्मोत्सवकी खुशहालीमें उनके छः ढाला पर हुए वैराग्यमय भाववाही शब्दशः प्रवचनोंका सेट (भाग-१,२,३) जिज्ञासुओं को ट्रस्ट द्वारा भेंट दिए जायेंगे।



विशेष अनुरोध

मंदिर, मुमुक्षुमंडल, पाठशाला, ईत्यादिके संचालकोसे हमारा अनुरोध है कि, स्वाध्याय प्रेमी मुमुक्षुओं के लिए यह प्रवचन सरल भाषामें होनेसे विशेष उपकारी हो सकते हैं, अतः आवश्यकता होनेपर आपके ग्रंथालय के लिए अधिक संख्यामें भी मँगवा सकते हैं।



संपर्क
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
नीरव चोरा मो: ●९८२५०५२९१३



REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

‘सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे’



श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : <http://www.satshrut.org>

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001